॥ ओ३म् ॥

शिव दर्शन

लेखक

सन्तोष कुमार

मनु

भूमिका

अपने पूर्वजों के इतिहास को जानने की ललक प्रत्येक व्यक्ति में होनी चाहिए। इसके अभाव में अनेक भ्रान्त विचार प्रचारित हो जाते हैं जिनसे मानसिक प्रदूषण का विस्तार होता जाता है। शिव हमारे ऐसे ही पूर्वज हैं जिनके विषय में अनेक कल्पित कहानियाँ प्रचलित हैं जिनके कारण उनका वास्तविक चरित्र उजागर नहीं हो पाता है। भ्रान्त विचारों का निराकरण नितान्त आवश्यक जानकर ही हमने इस निबन्ध को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

वैश्य वर्ग के अन्तर्गत माहेश्वरी समुदाय प्रसिद्ध है। इस समुदाय की वंशोत्पत्ति के विषय में कथा है कि किसी युद्ध में मृत हो चुके 72 उमरावों को भगवान् शिव ने जीवनदान दिया, इस उपलक्ष में उन्होंने महेश्वर को अपना उपास्य मानकर अपने समुदाय को माहेश्वरी नाम दिया। संयोग से हमारा सम्बन्ध इसी समुदाय से है। अतः मन में विचार आया कि अपने समुदाय के उपास्य महेश्वर के सम्बन्ध में गवेषणा की जाय। इसका मुख्य कारण तो यह रहा कि शिव का चरित्र पुराणों में प्राप्त होता है वह प्रशंसनीय नहीं है। हम स्वयं ऐसे चरित्र से अपने को सहमत नहीं कर पाते हैं। आश्चर्य की बात है कि महादेव मानते हुए भी पुराणों में उनका चरित्र बहुत ही निम्न स्तर का वर्णित किया गया है।

लोक प्रचलित धारणा के अनुसार वेद में उसी शिव का वर्णन माना जाता है। अब वेद तो आदिकाल से हैं, उनका शिव पुराणकाल के शिव से भिन्न व्यक्ति होना चाहिए। प्राचीन ग्रन्थों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि समय-समय पर शिव, महेश्वर, रूद्र और शंकर नाम के अनेक महापुरूष हुए हैं जिन्हें भ्रमवश एक ही मानक पुराणकारों ने उनके विषय में लिखा है।

इस प्रस्तुति में हमने उन विद्वानों के विचार भी दिये हैं जिन्होंने इस विषय पर गवेषणा की है। हम उनके प्रति अपनी भावभीनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। आशा करते हैं कि हमारे इस उपक्रम से जन-मानस में अपने पूर्वजों के वास्तविक इतिहास को जानने की इच्छा बलवती होगी। हमारा यह प्रयास गवेषणात्मक ही है निर्णय तो पाठकवृन्द पर ही छोड़ना समीचीन है।

यह भी विचारणीय है कि हमें उपासना किस शिव की करनी चाहिए।

-सन्तोष कुमार

ओ३म्

भारतीय देवमाला के तीन प्रमुख देव माने जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश। इनमें महेश ही शिव के नाम से प्रसिद्ध हैं। लोक प्रचलित धारणाओं के अनुसार जो चित्र इनका बनता है वह कुछ इस प्रकार है। इनके सिर पर जटाजूट के ऊपर चन्द्रमा विराजमान है, सिर से गंगा की धार निकल रही है, मस्तक पर त्रिपुण्ड की तीन रेखाओं के बीच तीसरी आँख होने का संकेत है, गले में सर्प की माला सुशोभित है, साथ ही मुण्डमाला भी पड़ी हुई है, कन्धे पर गजचर्म ओढ़े हुए हाथ में त्रिशूल धारी शिव के पास ही उनका वाहन नन्दी उपस्थित है, सारे शरीर पर भभूत रमी हुई है। इनका निवास स्थान कैलाश पर्वत कहा गया है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार शिव जहाँ अपने ताण्डव नृत्य से प्रलय को उपस्थित कर देते हैं वहीं वे शीघ्र ही प्रसन्न भी हो जाते हैं। सम्भवतः भोले-भाले और भोला शंकर कहे जाने के पीछे यही संकेत हो।

वैदिक मदुवृष्टि के लेखक डा. रामनाथ वेदालङ्कार ने पौराणिक और वैदिक रूद्र नामक लेख में अमरकोश के आधार पर 48 नामों का उल्लेख किया है- शंभु, ईश, पशुपति, शिव, शूली, महेश्वर, ईश्वर, शर्व, ईशान, शंकर, चन्द्रशेखर, भूतेश, खण्डपरशु, गिरीश, मृड, कपर्दी, मृत्युंजय, कृत्तिवासस्, पिनाकिन, प्रथमाधिप, उग्र, श्रीकण्ठ, शितिकण्ठ, कपालभृत्, हर, महादेव, विरूपाक्ष, त्रिलोचन, कृशानुरेतस्, सर्वज्ञ, धूर्जटि, नीललोहित, स्मरहर, भर्ग, रूद्र, त्र्यम्बक, त्रिपुरान्तक, गंगाधर, अन्धकरिपु, क्रतुध्वंसिन्, बृशध्वज, व्योमकेश, भव, भीम, स्थाणु, उमापति। इनमें से कुछ नाम वेद में पाये जाते हैं। कुछ नाम पौराणिक गाथाओं से युक्त हैं।

पौराणिक जगत की मान्यता है कि वेद में उसी शिव का वर्णन है जिसके नाम पर अनेक पौराणिक कथाओं का सृजन हुआ है और उसी की पूजा-उपासना वैदिक काल से आज तक चली आती है। किन्तु वेद के मर्मज्ञ इस विचार से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार वेद तथा उपनिषदों का शिव निराकार ब्रह्म है इसके विपरीत रामायण, महाभारत, पुराण आदि के शिव शरीरधारी मानव हैं। वेद का परमात्मा ऐतिहासिक परिधि से परे है। ऐसा स्थिति में आवश्यक हो जाता है कि वेद में देखा जाय कि वहाँ कौन से शिव का वर्णन है।

वेद में शिव

यजुर्वेद का सोलहवाँ अध्याय रूद्राध्याय के नाम से प्रसिद्ध है। इस अध्याय के देवता रूद्र, रूद्राः और बहु रूद्राः मुद्रित हैं। इसमें एक साथ ही रूद्र के अनेक नामों में शिव का भी उल्लेख है। इन के अर्थ भी अनेक प्रकाशित होते हैं। इन सभी नामों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि ये नाम न होकर परमात्मा के एक-एक गुण के आधार पर उसके विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

हम प्रतिदिन अपनी सन्ध्या उपासना के अन्तर्गत **नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकारय च मयस्कराय च नमः शिवाय च विवतराय च** (यजु. 16.41) के द्वारा परम पिता का स्मरण करते हैं।

इस मन्त्र में शंभव, मयोभव, शंकर, मयस्कर, शिव, शिवतर शब्द आये हैं जो एक ही परमात्मा के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

अथर्ववेद में भी 11.2 में सोलह मन्त्र रूद्र देवता वाले देखने योग्य हैं?

इस अध्याय में संसार का कल्याण करने से उसे 'शिव' और 'शंकर' कहा गया है। जगत की उत्पत्ति करने के कारण 'भव' और जगत का संहार करने के कारण उसे 'शर्व' कहा गया है। वेद में रूद्र पशुओं का रक्षक होने से 'पशुपति' कहा गया है। रूद्र को गिरिशन्त, गिरिश, गिरित्र, गिरिचर, गिरिशय आदि कहा गया है। वेद में गिरि शब्द मेघ और पर्वत के लिए प्रयुक्त हुआ है। पर्वत और मेघ के समान उच्च पर स्थिति तथा उनके द्वारा जगत को सुख देने के कारण उसे इन नामों से अभिहित किया गया है। गिरा वाणी को भी कहते हैं जिसके कारण वह वाणीका अधिपति सिद्ध होता है।

वेद में रूद्र 'त्र्यम्बक' तो है किन्तु वह तीन नेत्रों वाला न होकर 'सहस्राक्ष' अर्थात् असंख्य नेत्रों वाला है। त्र्यम्बक से तात्पर्य उस परमेश्वर से है जो जीवात्मा, कारण जगत् और कार्य जगत् का रक्षक है, अथवा तीनों कालों में एकरस ज्ञान वाला है। जिन मन्त्रों में यह शब्द आया है वे इस प्रकार हैं-

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।

उर्वारूकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। यजु. 3.60 ।।

अर्थ- विविध ज्ञान भण्डार, विद्यात्रयी के आगार, सुरभित आत्मबल के वर्धक परमात्मा का यजन करें। जिस प्रकार पक जाने पर खरबूजा अपने डण्ठल से स्वतः ही अलग हो जाता है वैसे ही हम इस मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जायें, मोक्ष से न छूटें। एक अन्य मन्त्र में भी त्र्यम्बक शब्द आया है देखें-

अव रूद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम्। यजु. 3. 58 ॥

महर्षि दयानन्द के अनुसार हम लोग तीनों काल में एकरस ज्ञानयुक्त(देवम्) देने वा (रूद्रम्) दुष्टों को रुलाने वाले जगदीश्वर की उपासना करके सब दुःखों को (अवादीमहि) अच्छे प्रकार नष्ट करें।

स्वामी ब्रह्ममुनि के अनुसार यहाँ रूद्र को तीन अम्ब (माता) वाला कहा है। ये माताएँ ऋक्, साम, यजुः तथा पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में उत्पन्न होने वाली अग्नि हैं। रूद्र का अर्थ दुष्टों को रूलाने वाला किया है।

वेद में विविध प्रकार के कार्य करने वाले लोगों को भी रूद्र कहा गया है जो अपने क्षेत्र में विशिष्ट स्थान रखते हैं-

नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्त्राक्षाय च शतधन्वने च

नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च ॥

-यजु. 16.29॥

अर्थ- सुख की पूर्ति देने वाले ज्ञान-प्रचारक ब्राह्मण, मुण्डित केश वाले ज्ञान-प्रचारक संन्यासी, गुप्तचर रूपी हजार आखों वाले राजा, सैकड़ों धनुर्धारी पुरूषों वाले राजा, वाणी में शयन करने वाले ज्ञानी, सदा यज्ञों में जीवन बिताने वाले, रक्षा के द्वारा अधिक सुखों का संचय करने वाले राजा तथा रक्षा के लिए बाणों को धारण करने वाले पुरूष का हम आदर करते हैं।

वेद में 'कृत्तिवासा', 'पिनाकी', 'नीलकण्ठ', 'शितिकण्ठ', 'नीललोहित' और 'गणपति' जैसे नाम भी आते हैं जो पौराणिक साहित्य में भी मिलते हैं किन्तु इनके अर्थ पौराणिक मान्यताओं से मेल नहीं खाते।

शिव संकल्प मन्त्र

इन मन्त्रों में शिव का अर्थ शुभ या कल्याणकारी के रूप में ही प्रयुक्त है।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति देवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।

दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे नमः शिवसंकल्पमस्तु।।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।

यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

यत्प्रज्ञानमुतचेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।

यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।

येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।

यस्मिँश्चित्तँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान् नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव।

हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

हे जगदीश्वर! जो मन जागृत अवस्था में तथा सोता हुआ भी दूर-दूर तक भागता है, दूर-दूर तक पहुँचने वाला ज्योतियों भी ज्योति, दिव्य शक्ति से युक्त ऐसा मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो। जिस मन से सत्कर्मनिष्ठ, मनीषी संयमी पुरूष यज्ञों तथा युद्ध अवसरों में कर्म करते हैं, जो मन प्रजाओं के बीच अपूर्व पूज्य है, ऐसा मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो। जो बुद्धि का उत्पादक स्मृति का साधक, धैर्य स्वरूप और मनुष्यों के भीतर नाशरहित प्रकाशस्वरूप है। जिसके बिना कोई भी काम नहीं किया जाता। वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो। जिस नाशरहित मन से, भूत, वर्तमान, भविष्यत् यह सब जाना जाता है। जिसके द्वारा सात होताओं द्वारा किये जाने वाला अग्निष्टोमादि यज्ञ विस्तृत किया जाता है, वह मेरा मन शुभ विचारों वाला

हो। जिस शुद्ध मन में, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद, रथ की नाभि में अरे के समान प्रतिष्ठित हैं और जिसमें प्राणियों का समग्र ज्ञान पिरोया हुआ है, वह मेरा मन शुभ विचारों वाला हो। जिस प्रकार एक अच्छा सारथी घोड़ों को इच्छानुसार ले जाता है उसी प्रकार मन भी मनुष्यों को नियम में रखता है। जो हृदय में स्थित है, जरा रहित तथा अतिशय गमनशील है। वह मेरा मन शुभ विचारों वाला हो।

यजुर्वेद के अनुसार परमात्मा सर्वत्र व्यापक, अनन्त शक्ति वाला, अजन्मा, निराकार, अक्षत्, बन्धन रहित, निर्मल, पाप रहित, सूक्ष्मदर्शी, ज्ञानवान्, सर्वोपरि, महान सत्ता है। स्वयं ही अपना स्वामी है। अपनी सदैव वर्तमान रहने वाली प्रजा के लिए यथायोग्य विधान का निर्माण करता है। मन्त्र इस प्रकार है-

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्।

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्

व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ यजुर्वेद 40.8

वेद में परमात्मा को ओ३म् नाम से अभिहित किया गया है अन्य सभी नाम उसके गुणों के आधार पर विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए है जैसे संसार की रचना करने से ब्रह्मा, सर्वव्यापक होने से विष्णु, दुष्टों को रूलाने से रूद्र, कल्याणकारी होने से शंकर। वेद में शिवतम और शिवतर रूप के शब्द आने से स्पष्ट हो जाता है कि ये सारे नाम विशेषण के रूप में ही प्रयोग किये गये हैं।

उपनिषद् में शिव

वेद के पश्चात् उपनिषदों में यत्र-तत्र शिव नाम आता है, वहाँ भी वेद के अनुसार शिव नाम विशेषण रूप में ही आता है। कैवल्योपनिषद् में तो स्पष्ट कहा है- **'स ब्रह्मा स विष्णुः स रूद्रस्सः शिवस्सोऽक्षरस्सः परमः स्वराट्। स इन्द्रस्सः कालाग्निस्स चन्द्रमाः ॥'** १.८

अर्थात् वह जगत् का निर्माता, पालनकर्ता, दण्ड देने वाला, कल्याण करने वाला, विनाश को न प्राप्त होने वाला, सर्वोपरि, शासक, ऐश्वर्यवान्, काल का भी काल, शान्तर और प्रकाश देने वाला है।

इसी प्रकार माण्डूक्य उपनिषद् में वर्णन किया है-

प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतम् चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ।।7 ।।

प्रपंच जाग्रतादि अवस्थायें जहाँ शान्त हो जाती हैं, शान्त आनन्दमय अतुलनीय चौथा तुरीयपाद मानते हैं वह आत्मा है और जानने के योग्य है।

यहाँ शिव का अर्थ शान्त और आनन्दमय के रूप में देखा जा सकता है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में शिव का स्थान

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।

सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात्सर्वगतः शिवः ।। श्वे. उ. 4.14

अर्थ- जो इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कर्ता एक ही है, जो सब प्राणियों के हृदयाकाश में विराजमान है, जो सर्वव्यापक है, वही सुखस्वरूप भगवान् शिव सर्वगत अर्थात् सर्वत्र प्राप्त है।

इसे और स्पष्ट करते हुए कहा है-

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्यमध्ये विश्वस्य सृष्टारमनेकरूपम्।

विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति।।

श्वे. उ. 4.14

अर्थ- परमात्मा अत्यन्त सूक्ष्म है, हृदय के मध्य में विराजमान है, अखिल विश्व की रचना अनेक रूपों में करता है। वह अकेला अनन्त विश्व में सब ओर व्याप्त है। उसी कल्याणकारी परमेश्वर को जानने पर स्थाई रूप से मानव परम शान्ति को प्राप्त होता है।

योगदर्शन में परमात्मा की प्रतीति इस प्रकार की गई है-

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपामृशष्टः पुरूषविशेष ईश्वरः ।। 1.1.24

जो अविद्यादि क्लेश, कुशल, अकुशल, इष्ट, अनिष्ट और मिश्र फलदायक कर्मों की वासना से रहित है, वह सब जीवों से विशेष ईश्वर कहाता है।

स एष पूर्वेषामपि गुरूः कालेनानवच्छेदात्।।1.1.26

वह ईश्वर प्राचीन गुरूओं का भी गुरू है। उसमें भूत भविष्यत् और वर्तमान काल का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि वह अजर, अमर नित्य है।

शिव को कहाँ देखें-

इस पर विचार करते हुए स्पष्ट किया है कि उसकी कोई आकृति नहीं।

नचेशिता नैव च तस्य लिंङ्गम्।। श्वे. उ. 6.1 ।।

अर्थात् उस शिव का कोई नियन्ता नहीं और न उसका कोई लिंग वा निशान है। वेद में भी इसका प्रतिपादन इस प्रकार मिलता है-

न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः।। यजु. 32.3

अर्थात् महान यश वाले परमात्मा की कोई प्रतिमा, मूर्ति और उसकी बराबरी की कोई वस्तु नहीं है जिससे उसकी तुलनी की जा सके। वह अनुपम है। किसी उपमा के द्वारा भी उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता।

वस्तुतः निराकार वस्त की कोई प्रतिमा बन नहीं सकती। किसी निराकार वस्तु की प्रतिमा कल्पना से भी नहीं बनाई जा सकती। कोई बनाने का दम्भ भी करे तो वह असत्य होगी और असत्य पर आधारित क्रिया का फल भी असत्य ही होगा।

इस परिस्थिति में निराकार शिव की उपासना किस प्रकार की जा सकती है इस समस्या का समाधान शास्त्रों के आधार पर ही सम्भव है।

शिव-दर्शन के लिए हमें कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। परमात्मा सर्वव्यापक होने से प्रत्येक स्थान पर उपस्थित है। वह हमारी आत्मा के साथ तो सदैव ही रहता है, तब हम उसे अपने ही हृदय में क्यों नहीं देखते। सांसारिक प्रपंचो में रत रह कर उसे भूल जाते हैं। आवश्यकता है उसे अपने ही मन मन्दिर में खोजने की। खोजेंगे तो अवश्य मिलेगा।

ज्ञानी जन अपने मन को निर्विषय कर ध्यान, धारणा के आश्रय से समाधि में उसका दर्शन करते हैं। वह स्थूल नेत्रों का विषय नहीं है।

रामायण में शिव का वर्णन

वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में शिव का वर्णन सर्वप्रथम तेईसवें सर्ग में मिलता है। विश्वामित्र के साथ भ्रमण करते हुए राम-लक्ष्मण जब सरयू तट पर बने एक आश्रम के विषय में पूछते हैं तो विश्वामित्र का उत्तर इस प्रकार मिलता है- "बुद्धिमानों में जो काम कहा जाता है वह कन्दर्प (पहले) शरीर धारी था। यहाँ नियमपूर्वक एकाग्र हुए तपस्या करते हुए विवाह करके मरूतों के साथ जाते हुए देवेश महादेव को दुषट बुद्धि वाले काम ने पीड़ित किया। महात्मा शिव ने हुंकार किया। हे रघुनन्दन! रूद्र की आँख से जले हुए दुर्मीति (काम) के शरीर से सब अंग गिर गये। महात्मा शिव से जलाये हुए अंग नष्ट हुए। देवेश्वर शिव ने क्रोध से काम को शरीर-रहित किया। हे राघव! इस काल से वह अनंग नाम से विख्यात हुआ। उसी (शिव) का यह पहले पुण्य आश्रम था।"

इस वर्णन से ज्ञात होता है कि पहले इस आश्रम में शिव नाम के कोई महात्मा रहते थे, उन्होंने तपस्या के बल पर 'काम' पर विजय प्राप्त करली थी। फिर से विवाह करने को प्रस्तुत हो गये तो निश्चित है कि 'काम' का सेवन उन्हें करना ही होगा। चब 'काम' को शरीर-रहित ही करना था तो विवाह की क्या आवश्यकता थी। स्पष्ट रूप से शिव वेद में कहे गये शिव नहीं हो सकते। ये पूर्णतः मानवीय गुणों से युक्त हैं। यह प्रसंग भी असंगत लगता है। हो सकता है कि ये प्रसंग पुराणों से उठाकर रामायण में प्रक्षेप किया हो। यदि ऐसा है तो इसकी सत्यता में सन्देह उत्पन्न होना अवश्यम्भावी है।

धनुष भंग के प्रसंग में जिस धनुष का नाम आता है वह पहले महात्मा रूद्र के द्वारा देवताओं को दिया गया। देवताओं के जनक के पूर्वज देवरात को धरोहर के रूप में दिया था। ये देवरात वर्तमान जनक से 19 पीढ़ी पूर्व के थे। अतः ये महात्मा रूद्र निश्चय ही कोई अलग व्यक्ति रहे होंगे। एक अन्य भ्रान्त धारणा है कि रावण शिवभक्त था। रामायण से यह प्रमाणित नहीं होता। यदि ऐसा होता तो युद्ध के समय जाते हुए वह अपने आराध्य के मन्दिर में विजय की कामना लेकर अवश्य ही जाता। रावण द्वारा किसी प्रकार की पूजा अर्चना न करने से तो यही सिद्ध होता है। मेघनाद द्वारा निकुम्भिला नामक स्थान में जाकर यज्ञ करने का प्रयत्न भी ऐसा ही प्रमाणित करता है। यह यज्ञ उसे एक विशाल वटवृक्ष के नीचे करना था जिसे वह सम्पन्न नहीं कर पाया। कारण, इसी समय वहाँ जाकर लक्ष्मण ने उसे युद्ध के लिए ललकारा। इसी युद्ध में वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। (देखें वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड सर्ग 85 से 91 तक) इसी काण्ड में सर्ग 57 के 21वें श्लोक में कहा है कि लंका तो अग्नि को तर्पित करने वाले पुरूषों से भरी पड़ी थी। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि लंकावासी मूर्तिपूजक न होकर यज्ञकर्ता थे। जिस समय हनुमान ने सीता की खोज में सारी लंका में भ्रमण किया तो उन्हें किसी शिवालय के दर्शन नहीं हुए अपितु ऐसे उत्तम राक्षसों के भवन देखे जो पर्व के अवसर पर यज्ञ करते थे। (देखें वा. रा. सुन्दरकाण्ड षष्ठ सर्ग 12वां श्लोक) तेतालीसवें सर्ग के 1 से लेकर 5वें श्लोक तक वाटिका में स्थित चैत्य प्रासाद के नष्ट करने का वर्णन है जिसमें मद्य मांसादि के द्वारा यज्ञ किया जाता था। इसे न देवालय कहा है और न मन्दिर।

युद्धकाण्ड में लंका विजय के पश्चात् पुष्पक विमान द्वार लौटते समय भगवान् राम सीता को वह स्थल दिखाते हैं जहाँ उन्होंने सेतुबन्ध का निर्माण कराया था। देखें स्वामी जगदीश्वरानन्द सम्पादित वाल्मीकि रामायण एकोनसप्ततितमः सर्गः पृष्ठ 558

एतत्तु दृश्यते तीर्थं सेतुबन्ध इति ख्याताम्।

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकोद्विभुः ।। 7 ।।

यह समुद्र का दूसरा किनारा दिखाई दे रहा है जो सेतुबन्ध के नाम से विख्यात है। यह वह स्थान है जहाँ पर सर्वव्यापक देवों के देव(महादेव) परमात्मा ने हमारे ऊपर कृपा की थी।

यहाँ महादेव शब्द आ जाने से यह कल्पना कर ली गई कि राम ने यहाँ शिवलिंग की स्थापना की थी और उसी स्थान पर आज रामेश्वरम् का मन्दिर विद्यमान है। वस्तुतः यह मन्दिर

ग्यारहवीं शताब्दी का निर्माण है और एक दक्षिण भारतीय राजा रामचन्द्र ने इसका निर्माण कराया इसीलिए इसका नाम रामेश्वरम् पड़ा है। यह राजा शिव का उपासक था।

उत्तर काण्ड में रावण और शिव के प्रसंग आते हैं। यह काण्ड वाल्मीकि की रचना न होने से इसमें आये प्रसंग ऐतिहासिक महत्व के नहीं प्रतीत होते। रावण द्वारा हिमालय पर्वत को अपने हाथों से उठाना, शिव के द्वारा उसे दबाकर रावण के प्रयत्न को विफल करना फिर शिव के द्वारा उसे चन्द्रहास नामक शस्त्र देने की बात आई है। इसी काण्ड में उल्लेख है कि बालू की वेदी पर रावण ने लिंग की स्थापना की, रावण जहाँ जहाँ जाता है अपने साथ सुवर्णमय लिंग ले जाता है। ये सारे ही प्रसंग उत्तर काण्ड के पूर्ण रूपेण प्रक्षिप्त होने के कारण कोई महत्व नहीं रखते।

महाभारत में शिव

महाभारत में शिव का वर्णन कई स्थलों पर देखने को मिलता है। आदि पर्व में समुद्र मन्थन से निकलने वाले विष पान के कारण इनका नाम नीलकण्ठ होना, राजा भगीरथ की प्रार्थना पर गंगा को शिरोधार्य करना। ऐसे सभी प्रसंग परोक्ष के होने से महाभारत के सन्दर्भ में विचार करने योग्य नहीं ठहरते।

विशेष उल्लेखनीय प्रसंग है पाशुपत अस्त्र लेने के लिए अर्जुन का शिव के पास जाना। शिव पहले भील का रूप धारण कर अर्जुन की परीक्षा लेते हैं फिर उसे योग्य पात्र समझ कर पाशुपत अस्त्र देकर उसके संचालन और संहार की विधि बताकर उसे स्वर्ग जाने की सलाह देते हैं।

कर्ण पर्व में ब्रह्मा और शिव के द्वारा अर्जुन की विजय की घोषणा की गई है। सौप्तिक पर्व में अश्वत्थामा जब पाण्डवों के शिविर पर आक्रमण करने जाता है तो शिव को शिविर के द्वार पर रक्षक के रूप में खड़ा पाता है, वह शिव पर ही प्रहार कर देता है, इस प्रयत्न में असफल होने पर उसे पराजय का मुख देखना पड़ता है। उसके आत्मसमर्पण से प्रसन्न होकर शिव उसे खड्ग प्रदान करते हैं।

ऐतिहासिक शिव भूटान के राजा थे जो उस समय भूतस्थान था, संक्षेप में भूतान और अंग्रेजी में लिखे जाने पर भूटान हो गया। आज यह एक छोटा सा राज्य है परन्तु उस समय यह

विस्तृत प्रदेश था। यहाँ के रहने वाले आज भी भोट या भोटिया कहे जाते हैं जो भूत और भूतिया के अपभ्रंश हैं।

शिव के भूतनाथ, भूतेश्वर, भूतपति, भूतेश नाम ही यह सिद्ध करते हैं कि ये भूतों पर शासन करते थे। गिरीश नाम भी इनको पहाड़ी प्रदेश का शासक सिद्ध करता है। इनकी स्त्री का नाम उमा था, पर्वतीय महिला होने के कारण पार्वती कहा गया। इनकी गद्दी कैलाश पर्वत पर थी यहीं से वे पूर्वोत्तर में निवास करने वाले भूतों तथा पश्चिम के पिशाचों पर शासन करते थे।

सभ्यता की दृष्टि से इनका स्तर देव अथवा असुरों से निम्न ही ठहरता है। जिस समय विष्णु रेशम का बना पीताम्बर धारण करते थे, साधारण भारतीय सूती वस्त्रों का प्रयोग करते थे उस समय शिव कच्चे चमड़े के वस्त्र पहनते थे इसी लिए उन्हें कृत्तिवासा कहा गया है। महाभारत के पात्रों से इनका प्रत्यक्ष मिलाप होना यही सिद्ध करता है कि इनका अस्तित्व कौरव-पाण्डवों के समय ही था।

शान्ति पर्व में दक्ष के यज्ञ को विध्वंस करने का आदेश देना जिसके अन्तर्गत उनके संवक वीरभद्र एवं उनके गणों द्वारा दक्ष की यज्ञशाला को जिल प्रकार नष्ट किया गया वह इनकी निम्नस्तरीय सभ्यता और संस्कृति का दर्शन कराती है। शिव को क्रतु-ध्वंसी (यज्ञ का विनाश करने वाला) इसी कारण कहा गया। इनका यह कार्य इन्हें यज्ञ-विरोधी सिद्ध करता है।

दक्ष के यज्ञ-विध्वंस का विवरण महाभारत और शिवपुराण दोनों में मिलता है। महाभारत (शान्तिपर्व) के अनुसार दक्ष ने अपने यज्ञ में उनको निमंत्रित नहीं किया इस यज्ञ में दक्ष ने हवि भगवान् विष्णु को समर्पित करने का व्रत लिया था।

उधर पार्वती को यह अच्छा नहीं लगा कि यज्ञ भाग में शिव का स्थान नहीं है, इस पर भगवान् शंकर ने कहा कि उन्हें मेरी महत्ता का ज्ञान नहीं है। उमा को सांत्वना देकर उन्होंने अपने मुख से एक भयंकर भूत (वीरभद्र) प्रकट किया और उसे आज्ञा दी कि जाकर दक्ष का यज्ञ नष्ट कर दो। पार्वती के क्रोध से प्रकट हुई भयंकर आकार वाली महाकाली ने भी साथ दिया और यज्ञ को नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया। इस क्रम में भूतगणों ने यज्ञ शाला में आग लगा दी, यूप उखाड़ दिये, सामग्री को रोंद डाला, उपस्थित लोगों से मारपीट की अन्न, पान, भोज्य पदार्थों को यत्र-तत्र विखेर दिया।

उस समय ब्रह्मा आदि देवताओं और दक्ष प्रजापति ने पूछि कि – आप कौन हैं, तब वीरभद्र ने उत्तर दिया कि हम शिव पार्वती के क्रोध से उत्पन्न होकर उनकी आज्ञा से यज्ञ नष्ट करने आये हैं। तुम्हें उनकी शरण में ही जाना चारिए। दक्ष के द्वारा शिव की स्तुति किये जाने पर शिव अग्निकुण्ड से प्रकट होकर बोले- ब्रह्मन्! बताओ मैं तुम्हारा कौन सा प्रिय कार्य करूँ? दक्ष ने कहा- यदि आप प्रसन्न हों तो मैंने बहुत दिनों से परिश्रम करके जो यज्ञ की सामग्री जुटाई थी वह आपके गणों द्वारा नष्ट भ्रष्ट की जा चुकी है, वह व्यर्थ न जाय, उसके द्वारा इस यज्ञ की पूर्ति हो जाय-यही कृपा कीजिए। भगवान् ने तथास्तु कहकर दक्ष की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

शिखण्डी शिव

महाभारत सौप्तिक पर्व में अ. 17 के 10 से लेकर 24वें श्लोक तक के अनुवाद के अनुसार प्रभावशाली ब्रह्मा ने प्राणियों की सृष्टि करने की इच्छा से सबसे पहले महादेव जी को देखा। तब ब्रह्मा ने उनसे कहा प्रभो! अब अविलम्ब सम्पूर्ण भूतों की सृष्टि कीजिए। यह सुनकर महादेव जी तथास्तु कहकर भूतगणों के दोष देखकर जलमग्न हो गये और महान तप का आश्रय लेकर दीर्घकाल तक तपस्या करते रहे। उधर पिताह ब्रह्मा ने सुदीर्घकाल तक उनकी प्रतीक्षा करके अपने मानसिक बल से दूसरे सर्वभूत सृष्टा को उत्पन्न किया। उस सृष्टा ने महादेव को जब में सोया देख अपने पिता ब्रह्मा जी से कहा कि यदि दूसरा कोई मुझसे ज्येष्ठ न हो तो मैं प्रजा की सृष्टि करूँ। यह सुनकर ब्रह्मा जी ने कहा कि तुम्हारे सिवाय कोई दूसरा अग्रज पुरूष नहीं है। ये शिव हैं भी तो पानी में डूबे हुए। अतः तुम निश्चित होकर सृष्टि का कार्य आरम्भ करो।

जब प्राणी समुदाय की भली प्रकार वृद्धि हो गई और गुरू ब्रह्मा जी भी संतुष्ट हो गये तब वे ज्येष्ठ पुरूष शिवजी जल से बाहर निकले। जब उन्होंने देखा कि संसार में समस्त प्रजाओं की वृद्धि हो रही है तो वे कुपित हो गये और उन्होंने अपना लिंग काटकर फेंक दिया। तब ब्रह्मा ने उन्हें शान्त करते हुए कहा कि आपने दीर्घ काल तक जल में रहकर कौन सा कार्य किया और इस लिंग को उत्पन्न करके किस लिए पृथ्वी पर डाल दिया है? यह सुनकर कुपित हुए जगद् गुरू शिव ने ब्रह्मा जी से कहा प्रजा की सृष्टि तो दूसरे ने कर डाली फिर इस लिंग को रखकर मैं क्या करूँगा?

सम्भवतः शिवपुराण में इसीलिए शिवजी को शिखण्डी नाम दिया गया है।

'तथैव मारूते पत्रे शिखंडीश समर्चयेत्।' । 9 । शिव. वायु स. अ. 30

अर्थ- मारूत पत्रों से शिखण्डी (नपुंसक) शिवजी की पूजा करें।

शिवजी के चार मुखों का रहस्य

तिलोत्तमा नाम पुरा ब्रह्मणायोषिदुत्तमा।

तिलं तिलं समुद्धत्य रत्नानां निर्मिता शुभा।।1 ।।

यतो यतः सुदती मामुपाधावदन्ति के।

ततस्ततो मुख चारू ममदेवि विनिर्गतम्।। 3 ।।

तां दिद्वक्षुरहं योगच्चतुर्मूर्तित्वमागतः।

चतुर्मुखश्च संवृत्तो दर्शयन् योगमुत्तमम्।। 4 ।। (महा. अनु. अ. 141)

(शिवजी ने कहा) पूर्वकाल में ब्रह्मा ने एक सर्वोत्तम नारी की सृष्टि की थी। उन्होंने सम्पूर्ण रत्नों का तिल-तिल भर सार उद्धृत करके उस शुभ लक्षणा सुन्दरी के अङ्गों का निर्माण किया था इसलिए वह तिलोत्तमा नाम से प्रसिद्ध हुई। वह सुन्दर दाँतों वाली सुन्दरी निकट से मेरी परिक्रमा करती हुई जिस दिशा की ओर गई उस-उस दिशा की ओर मनोरम मुख प्रगट होता गया। तिलोत्तमा के उस रूप को देखने की इच्छा से मैं चतुर्मुख हो गया इस प्रकार मैंने लोगों को उत्तमोत्तम योगशक्ति का दर्शन कराया।

इस प्रसंग पर डा. श्रीराम आर्य 'पौराणिक गप्प दीपिका' में लिखते हैं- "तिलोत्तमा नाम की सुन्दरी स्त्री के रूप पर शिवजी इस कदन मोहित हो गये कि उनकी आँखें उस पर चिपक कर रह गईं, उन्होंने सर घुमा कर देखते रहने की बजाय अपने तीन तरफ तीन मुँह और बना लिए। इस अवस्था में प्रगट हुए चतुर्मुखी शिव की पूजा कहीं कहीं आज भी होती है। यह शिवजी का

रहस्य जब पाठकों पर प्रगट होगा तो वे इस पर हँसे बिना न रहेंगे। अपने ही पूज्य देवताओं की मजाक उड़ाने में पौराणिक विद्वानों ने कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी है।"

"ओह! शिवजी के डमरू का कमाल" ('आर्य संसार' मार्च 2012) में मुद्रित लेख में आचार्या सूर्या देवी चतुर्वेदा ने लिखा है-

लोक ने शिव की महत्ता की चमत्कारी कथा भी जोड़ ली कि सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा ने शिव को फाल्गुन बदी चतुर्दशी को उत्पन्न किया उस समय जगत् प्रलयावस्था में था। सर्वत्र शून्य ही शून्य था। सब अदृश्य था, तब उत्पन्न हुए शिव ने ताण्डव नृत्य किया। शिव के नृत्य से सृष्टि बन गई। इतना ही नहीं नृत्य के पश्चात् शिव ने जो डमरू बजाया, उस डमरू के बजाने से ही व्याकरम के 14 सूत्र प्रकट हो गये। यानि जो पाणिनीय अष्टाध्यायी में अइउण् आदि 14 प्रत्याहार सूत्र हैं वे शिव के डमरू वादन से प्रकट हो गये। शिवजी के डमरू के इस कमाल को मैं ही क्या, सभी वर्षों से सुनते चले आ रहे हैं।...... लोक, भट्टोजि दीक्षित एवं नन्दिकेश्वर (व्याकरणकार) की यह मान्यता कि 'शिव के डमरू बजाने पर 14 सूत्र निकेल, यह न मान्य हो सकती है, न विश्वसनीय है।.....डमरू से निकलने वाला जो है वह तो ध्वनि वर्ण नहीं है।.....डमरू से शब्द निकलते होते, तो आज भी खूब डमरू बजते हैं, उनसे भी अष्टाध्यायी के अइउण् आदि सूत्र न सही, पर अन्य सूत्र तो निकलते।'

व्याकरण परम्परा की एतिहासिक दृष्टि से भी प्रत्याहार सूत्र डमरू से निःसृत सिद्ध नहीं होते। व्याकरण के दो प्रकार के ग्रन्थ हैं- एक प्राचीन, दूसरे अर्वाचीन। व्याकरण के प्राचीन आचार्य अनेक हैं। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में प्राचीन आचार्यों मे से आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, चाक्रवर्मण, भारद्वाज, शाकटायन्, शाकल्य, स्फोटायन इन 10 आचार्यों का उल्लेख किया है। शिवमहेश्वर (91.500 वि. पूर्व), बृहस्पति (10.000 वि. पूर्व), वायु (9.500 वि. पूर्व), भारद्वाज (9300 वि. पूर्व), चारायण (3100 वि. पूर्व), काशकृत्स्न (3100 वि. पूर्व), सान्तनव (3100 वि. पूर्व), वैयाग्रपद्य(3100 वि. पूर्व), माध्यन्दिनि (300 वि. पूर्व) इन 16 आचार्यों का उल्लेख नहीं किया। - पं. युधिष्ठिर सं. व्या. शास्त्र का इतिहास।

इन अनुल्लिखित 16 आचार्यों में ऐतिहासिक शिव महेश्वर व्याकरण के अति प्राचीन आचार्य हैं। ये व्याकरण के प्रकृष्ट विद्वान् थे। महाभारत आदि ग्रन्थों से प्रज्ञात होता है कि शिव महेश्वर ने षडङ्गों का ग्रन्थन किया था। इन वैयाकरण शिव महेश्वर का शिव रात्रि के अधिष्ठात्री

देवता के साथ सम्बन्ध जोड़ना भी इतिहास के विरूद्ध है। वंशब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार वैयाकरण शिव महेश्वर की माता सुरभि एवं पिता, प्रजापति काश्यप हैं और अधिष्ठात्री देवता शिव के पिता किवदन्ती के अनुसार ब्रह्मा हैं। प्राचीन आचार्य शिव महेश्वर ने षडङ्गों का ग्रन्थन किया था, इसका वर्णन महाभारत के शान्तिपर्वान्तर्गत मोक्षधर्म पर्व में आता है।

आचार्य महेश्वर ने व्याकरण के अतिरिक्त अर्थ शास्त्र, वैद्यक शास्त्र, धनुर्वेद, वास्तुशास्त्र, नाट्य शास्त्र, छन्द शास्त्र, मीमांसा शास्त्र आदि अन्य ग्रन्थों की भी रचना की है। आचार्य ब्रह्मा के सदृश महेश्वर शिव भी अनेक विद्याओं के प्रवर्तक हैं।

महाभारत शान्तिपर्व के 142 वें अध्याय के 47 वें श्लोक में 7 वेदज्ञों के नाम हैं, उनमें शिव वेदज्ञ की भी गणना है। शिव महेश्वर गीत वादित्र, शिल्प आदि के ज्ञाता थे। इसका वर्णन महाभारत के शान्तिपर्व के 284 वें अध्याय में किया गया है।

हम देखते हैं कि महाभारत में ही दो शिवों का वर्णन है। एक वे हैं जो महाभारत काल से लगभग 6 हजार वर्ष पूर्व के हैं और दूसरे वे जो भूतों के राजा कैलाश वासी हैं। इनका अस्तित्व कृष्ण और अर्जुन के समय का ही है। इन दोनों को एक करके मानने से सारा इतिहास क्रम ही दूषित हो जाता है।

सम्भावना है कि इसी प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में उल्लिखित अन्य व्यक्ति भी शिव, शंकर, रूद्र, महादेव, महेश, महेश्वर आदि नामधारी हों और उनके सुकृतों को विस्मृत न होने देने के लिए शिव की कथाओं में स्थान मिल गया हो। किन्तु इससे इतिहास में व्यवधान उत्पन्न हो गया। पुराणकारों ने इन सभी महापुरूषों के चरित्र को एक ही व्यक्तिके साथ जोड़ दिया है।

पुराणों के शिव

स्कन्द पुराण में शिव का धाम कैलाश पृथ्वी से लगभग बीस अरब अड़तालीस करोड़ मील ऊपर कहीं आकाश में बताया है। जबकि साधारण भारतीय हिमालय स्थित कैलाश पर्वत को उनका निवास स्थान मानते हैं। शैव लोग उनको साक्षात परमात्मा मानकर उनकी पूजा करते हैं। उनकी भी मनुष्याकृति में कल्पना की गई है, साथ ही शिवलिंग के रूप में अधिकांश मन्दिरों में उनका पूजन प्रचलित है। शिवजी को अवधूत माना गया है वे शरीर पर भस्म लपेटते थे। उन्हें

संहार का देवता माना गया है। उनके जटाजूट से गंगा का निकलना, सिर पर चन्द्रमा का होना, गले में सर्पों की माला, कहीं-कहीं मुण्डमाला, हाथ में त्रिशूल और त्रिशूल में डमरू का बंधा होना, वस्त्र के नाम पर मृगचर्म धारण करना, विषैले पदार्थों का सेवन करना, बैल की सवारी करना, इस प्रकार का चित्रण शिव के विषय में पाया जाता है।

शिव-महात्म्य को दर्शाने वाला शिव पुराण है। दक्ष के यज्ञ को विध्वंस करने वाली कथा शिव पुराण में भी आती है किन्तु इस कथा में शिव की पूर्व पत्नी सती अपने पिता दक्ष के यज्ञ में बिना बुलाये ही चली जाती है और वहाँ शिव का भाग न देखकर यज्ञकुण्ड में आत्मदाह कर लेती है। इससे कुपित होकर शिव अपने गण वीरभद्र को यज्ञ नष्ट करने का आदेश देते हैं। दक्ष का सिर काट दिया जाता है। अन्त में देवताओं के अनुनय करने पर शिव दक्ष के धड़ पर बकरे का सिर लगा देते हैं। क्या यह सम्भव है? मनुष्य के धड़ पर बकरे का सिर लगा देने से वह किस भाषा में बात करेगा? उसका मस्तिष्क, कंठ और तालु आदि तो बकरे के ही रहेंगे। अतः यह कथा असंगत है। महाभारत की कथा स्वाभाविक लगती है। यदि यह घटना सत्य होती तो सभी ग्रन्थों में एस सी होती। कल्पित प्रसंग तो जितने ग्रन्थ होंगे उतने ही विविधता वाले होंगे।

पुराणों में शिवलोक वर्णन

केदार कल्प पुराण पटल 35, श्लोक 6 से 8 के अनुसार सहस्त्रों कोटि अप्सरायें हार, बाजूबन्द आदि से भूषित पाजेब पहने सम्पूर्ण श्रृंगार की शोभा से युक्त अक्षय यौवन वाली पार्वती के सदृश्य दिव्य वस्त्र धारिणी, महा भोग सहित शिव के समीप क्रीड़ा करती हैं। जब तक पृथ्वी तथा समुद्र में जल रहता है। देवी भागवत स्कन्द 1 अ. 11 के अनुसार शिवजी नित्य ही कामिनियों की भुजाओं में फंसे रहते हैं।

केदाव कल्प पुराण पटल 43 श्लोक संख्या 21 से 43 के अनुसार शिवजी के स्थान पर दिव्य पुष्प की सुगन्धि और कुंकुम मस्तक पर लगाये हुए, ताम्बूल चाबे, जिनके ललाट में दिव्य जाति के तिलक, बिजली की सी कान्ति, मृग के से नेत्र वाली, हंसगामिनी, कुण्डल आभरणों से उज्जवल, मुख पर चन्द्रकला-चन्द्रभास्कर के समान मनोहर तोते की सी नाक वाली, दाड़िम के समान दाँत, भूषण पहिने। अमृत कोकिला जैसा स्वर, हाथों में कंकण, हार, केयूर से भूषित, फल के आकार के स्तन, कर्णफूल धारे, कमर में मेकला, गम्भीर नाभि, सिंह के समान कमर।

संसार से पृथक् रहने वाले सिद्ध से युक्त लोग, जिनका गुह्य स्थान और हृदय पवित्र है, ऐसी स्त्रियों को जरा और मृत्यु से रहित होकर भोगते हैं।

विभिन्न पुराणों में शिव का वर्णन अलग-अलग प्रकार से किया गया है। जहाँ पुराणों में शिव को देवाधिदेव महादेव के नाम से प्रसिद्ध किया गया है वहीं उनके चरित्र पर लांछन भी लगाये गये हैं जो निश्चय ही किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के चरित्र से मेल नहीं खाते।

शिवपुराण शतरूद्र संहिता अध्याय 25 में शिव को वेश्यागामी, बताया गया है। शिव जी सोने का रत्नजटित कंगन पहन कर महानन्दा वेश्या के घर में गये और कंगन को दिखाकर कहने लगे कि- " तुझको यह पसन्द है तो तू पहन ले पर बता इसका मूल्य क्या देगी?" वह बोली-

"वयं हि स्वैरचारिण्यो वेश्यास्तु न पतिव्रता।

अस्मत् मुलोचितो धर्मो व्यभिचारो न संशय।।21 ।।

दिनत्रयमहोरात्रं पत्नी तव भवाम्यहम्।। 22 ।।"

"हम व्यभिचारिणी वेश्या हैं, पतिव्रता नहीं। हमारे कुल का धर्म व्यभिचार है। मैं तीन दिन और तीन रातों के लिए आपकी पत्नी बन जाऊँगी।" बस यह कहकर –

सा तेन संगता रात्र्यौ वेश्येन विटधर्मिणा।

सुखं सुष्वाय पर्यंके मृदु तल्योय शोभिते।।30 ।।

वैश्य का रूप धारण किये शिवजी के साथ वह महानन्दा वेश्या कोमल तकियों गद्दों वाले पलंग पर सो गई।

जुआ- खेलना- पद्मपुराण उत्तर खण्ड 6 अध्याय 122 श्लोक 25-26-27-29

शङ्करश्च भवानी च क्रीडया द्यूतमास्थितौ। 25

गौरी जित्वा पुरा शम्भुर्नग्नो द्यूते विसर्जितः।

अतोऽयं शङ्करो दुःखी गौरी नित्यं सुखेस्थिता।।26 ।।

शिवजी और पार्वती जी दोनों जुआ खेलने में स्थित हुए। पार्वती ने विजय प्राप्त करके शिवजी को जुए में नंगा करके त्याग दिया। इसलिए शिवजी बहुत दुखी हुए और गौरी नित्य सुख भोगने लगीं।

(अमर स्वामी रचित 'वेद और पुराण' नामक लेख 'आर्योदय' वेदाङ्क मार्च 1966 से साभार)

दीपावली पर जुआ खेलने का प्रचलन सम्भवतः इसी पुराण-शिक्षा का परिणाम है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण (एक सरल समीक्षा) पृष्ठ 17 पर **शिव निन्दा** के अन्तर्गत डा. भवानी लाल भारतीय लिखते हैं- "शिव निन्दा में यह पुराण किसी प्रकार कम नहीं है। कहते हैं कि कुमारसम्भव में पार्वती परमेश्वर के सम्भोग श्रृंगार का नग्न वर्णन करने के फलस्वरूप कालिदास को कोढ़ हो गया था। यदि यह बात सत्य हो तो अपने पूज्य देवताओं की रति का जितना वीभत्स और खुला वर्णन पुराणों में हुआ है, उसे देखते हुए पुराणकारों के लिए तो कुष्ठ से भी भयंकर कोई रोग का दण्ड विधान होना चाहिए। गणपति खण्ड के प्रथम अध्याय में ही पार्वती और शङ्कर के जिस विहार का वर्णन हुआ है उसमें पुराणकार विपरीत रति का वर्णन करना भी नहीं भूले है:-

तयोर्बभूव श्रृंगारो विपरीतादिको महान्। ग. 16 ।।

जिस जाति के देवता ही इस प्रकार के दुराचारी व लम्पट हों, उनसे संयम, नियम, ब्रह्मचर्य और वीर्यरक्षण की क्या शिक्षा ली जा सकता है। इतना ही नहीं, शिव को काम विभोर अवस्था में सर्वत्र चित्रित किया गया है। जब उनकी पूर्व पत्नी सती का देहान्त हो गया तो अत्यन्त कामातुर होकर शिव ने सती के मृत देह को ही अपने हृदय पर रख लिया। पुनः-

अधरे चाधरं दत्वा वक्षो वक्षसि शङ्करः।

पुनः पुनः समाश्लिष्य पुनर्मूर्छामवापसः।। श्री. पू. 43.17 ।।

अधरों पर अधर और वक्ष पर वक्ष रख शंकर ने उस मृतक शव का आलिंगन किया और पुनः मूर्छित हो गये। जिस व्यक्ति को मृत और जीवित का ही ज्ञान न हो और जो काम मोहित

होकर इस प्रकार की गर्हित चेष्टायें करे, क्या वह हमारा आदर्श हो सकता है? पार्वती के विवाह के अनन्तर शिव ने उससे जो महा श्रृंगार आरम्भ किया उसकी अवधि सहस्र वर्ष पर्यन्त बताई गई है।

महाश्रृंगारमारेभे सहस्राब्दं जगत्पिता।। श्री. पू. 46.48 ।।

यह घोर विलासिता से पूर्ण आदर्श ही ब्रह्मवैवर्त में सर्वत्र चित्रित किया गया है।

भागवत पुराण

इस पुराण में दूसरे देवताओं से विष्णु की आराधना कराई गई है। स्कन्ध 8, अध्याय 12 में मोहिनी अवतार को देखें- विष्णु जी अत्यन्त सुन्दरी स्त्री मोहिनी का रूप धारण करके गेंद उछालते हुए हाव-भाव, चटक-मटक से शिवजी के पास आये। उन्हें देखकर वह काम से उन्मत्त हो गये और अपने को वश में रख सके। जैसे मस्त हाथी हथिनी के पीछे दौड़ता है, वैसे ही वे मोहिनी के पीछे दौड़े और उसे पकड़ लिया। मोहिनी अपने को छुड़ाकर भाग निकली। मोहिनी को देखने से वे इतने बेचैन हो गये कि वे अपनी आत्मा, पार्वती और जितने सेवक थे, उन सबको भूल गये। जहाँ कहीं भी ऋषि-मुनि, वन पर्वत और तालाब थे, वहाँ सब स्थानों पर शिवजी ने मोहिनी के पीछे दौड़ लगाई। जिससे उनका वीर्य-पात हो गया। जब उनकी यह दशा हो गई तो हार कर बैठ गये और पार्वती से बोले- देखा तुमने विष्णु की कैसी माया हैं? जब उनकी माया को देखकर मैं जो इतना बड़ा और स्वतंत्र हूं, मोहित हो गया, तब परतंत्र दूसरे देवताओं का तो कहना ही क्या है।

यद्यपि हम तो इसे कहानी मात्र ही मानते हैं, तदपि पुराणकार की दृष्टि में शिवजी का क्या स्थान है, यह विचारणीय है।

एक और कथा जो शिवजी के भोलेपन के विषय में प्रचलित है, उस पर भी विचार करते हैं।

इसके अनुसार वृकासुर ने शिवजी की भारी तपस्या की। अपने शरीर को काट-काट कर हवन किया। जब सिर को काटने लगा तो शिवजी ने प्रकट होकर वरदान माँगने को कहा तो उसने यह वर माँगा कि मैं जिसके सिर पर हाथ रख दूँ वही मर जाय। शिवजी ने 'ऐसा ही हो'

कहकर मानो उसे अमृत पिला दिया। वृकासुर की इच्छा हुई कि वह पार्वती को हर ले। वह वर की परीक्षा के लिए उन्हीं के सिर पर हाथ रखने का उद्योग करने लगा। तब शिवाजी अपने ही दिये वरदान से भयभीत होकर भागने लगे। भगवान विष्णु ने शिवजी को सङ्कट में देखा तो वे ब्रह्मचारी बनकर दूर से धीरे-धीरे उस असुर के पास जाने लगे। उन्होंने उससे कहा "दानवेन्द्र! यदि आप शिव को जगद्गुरू मानते हो तो उनके वर की परीक्षा अपना हाथ अपने सिर पर रख कर कर लीजिए। विस्मृति हो जाने से उस दुर्बुद्धि ने भूल कर अपना हाथ निज सिर पर रख लिया। बस उसी क्षण उसका सिर फट गया और वृकासुर (भस्मासुर) मर गया। भा. 10.21-88 (डा. श्री राम आर्य- 'भागवत समीक्षा' पृष्ठ 227 से उद्धृत)

इस प्रसंग में शिव की अज्ञानता के दर्शन होते हैं। वे यह नहीं जान सके कि इस वर का उपयोग वह किसके ऊपर करेगा। ऐसा अनिष्टकारी वर नहीं देना चाहिए था। फिर जब वह उनको ही भस्म करना जाहता था तो अपनी रक्षा वे अपने त्रिशूल से ही कर सकते थे या फिर अपना सर्प ही उसके ऊपर छोड़ देते। कुछ नहीं तो अन्तर्धान ही हो जाते जिससे वह उन्हें देख ही नहीं पाता। वस्तुतः यहाँ पुराणकार को विष्णु की प्रतिष्ठा कसी थी। यदि यही कथा शिवपुराण में होती तो शिव की ही महिमा गाई जाती।

एक अन्य प्रसंग शंखचूड का देखें शिवपुराण रूद्रसंहिता अ. 19 से- यह दम्भ का पुत्र था और इसका विवाह ब्रह्मा ने तुलसी के साथ कराया था। यह सती-साध्वी महिला थी। गुरू शुक्राचार्य ने शंखचूड को दैत्यों और असुरों का अधिपति बना दिया। कुछ ही समय में अपने बल-पराक्रम से सम्पन्न शंखचूड देव, दानव, राक्षस, गन्धर्व, नाग, किन्नर और मनुष्यों का एकछत्र सम्राट बन गया। उसके राज्य में न तो अकाल ही पड़ता था और न ही महामारी। सारी प्रजा सदा ही सुखी रहती थी। देवताओं के अतिरिक्त सभी जीव सुखी थे। ये देवता ब्रह्मा और विष्णु को लेकर शिव के पास गये और अपने दुःखों का वर्णन किया। शिव ने पहले उसके पास अपना दूत भेजा जिसका उत्तर उसने दिया कि बिना युद्ध के राज्य वापस नहीं करूँगा। अब शिव ने विपुल सेना लेकर उस पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध के बीच ही भविष्यवाणी हुई कि जब तक शंखचूड के पास कवच रहेगा और उसकी पत्नी का सतीत्व अखण्डित रहेगा तब तक जरा और मृत्यु का उस पर प्रभाव नहीं होगा। इस कार्य के लिए विष्णु को नियुक्त किया गया। पहले विष्णु ने ब्राह्मण वेश में उससे कवच माँग लिए फिर उसी का रूप बनाकर उसकी पत्नी का शीलहरण किया। तभी शिव ने अपने त्रिशूल से उसका वध कर दिया। जब तुलसी को विष्णु के

झल का पता लगा तो उसने विष्णु को पत्थर हो जाने का शाप दे दिया। तुलसी ने भी अपना शरीर त्याग दिया।

इस प्रसंग में हम देखते हैं कि शिव बिना विष्णु की सहयता के उसे नहीं मार पाये। विष्णु ने अधर्म का आश्रय लिया और शीलहरण जैसा पाप कर्म किया जो किसी भी दृष्टि से क्षम्य नहीं है। भले ही यह कार्य देवों को राज्य दिलाने के लिए किया गया हो। इस पुराण के अनुसार ही शंखचूड के राज्य में सुख-शान्ति थी। यहाँ शिवपुराण के कर्ता ने विष्णु का आभार तो माना किन्तु विष्णु को दुराचारी बनाकर। इन ग्रन्थों में भविष्यवाणी भी कही जाती है जिसका पता ही नहीं चलता कि यह भविष्यवाणी कौन करता है? इसके कर्ता को सब कुछ पहले से ही कहाँ से मालूम हो जाता है?

पुराणों के अध्ययन से पता चलता है कि जिस देवता को प्रमुख मान कर जो पुराण लिखा गया है उसी देवता से सारी सृष्टि का निर्माण करा दिया गया है।

शिव किसके पुत्र

शिव के भक्तों की यह मान्यता है कि शिव आदिदेव हैं वे किसी के पुत्र नहीं। किन्तु भागवतानुसार उनकी उत्पत्ति ब्रह्मा की भृकुटि से हुई। देखें-

सोऽवध्यातः सुतैरेवं प्रत्याख्यातानुशासनैः।

क्रोधं दुर्विषहं जातं नियन्तुमुप चक्रमे।।6 ।।

धिया निग्रह्य माणोऽपि भ्रुवोर्मध्यात्प्रजायते।

सद्योऽजायत तन्मन्युः कुमारो नील लोहितः।। 7 ।। (भागवत 3.12)

अर्थात् ब्रह्मा ने देखा कि मेरे पुत्र मेरा तिरस्कार कर रहे हैं तो उन्हें बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। उन्होंने उसे रोकने का बुद्धिपूर्वक यत्न किया। किन्तु उसी समय उनकी भृकुटि से नीललोहित रङ्ग का बालक रूद्र (शिवजी) पैदा हो गये। पद्म पुराण (उत्तर खण्ड अध्याय 125 कलकत्ता) के अनुसार।

(डा. श्रीराम आर्य कृत भागवत समीक्षा से उद्धृत)

महर्षि दयानन्द ने पूना में दिये प्रवचनों में प्रथम महेश को अग्निष्वात्त का पुत्र बताया है। सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास में ब्रह्मा विष्णु और महेस की उत्पत्ति देवी भागवत के आधार पर देवी के हाथ रगड़ने से हुई।

शिव के चार विलक्षण पुत्र

शिव जी के दो विवाह हुए। पहला सती के साथ, दूसरा पार्वती के साथ। शिव के चार पुत्र कहे गये हैं। जो कार्तिकेय, गणेश, शुक्राचार्य और अंधक कहे गये हैं। इन सभी पुत्रों की उत्पत्ति असाधारण और अस्वाभाविक, सृष्टि नियम के विरूद्ध होने से काल्पनिक ही है। सम्भवतः शिव का कोई पुत्र नहीं था। पुराणों में इन्हें शिखण्डी कह कर भी पुकारा गया है। इससे यही सिद्ध होता है कि ये निःसन्तान थे।

कार्तिकेय- शिवपुराण कुमार खण्ड अ. 1 के अनुसार शिव और पार्वती की रति क्रिया एक सहस्र पर्यन्त चलती रही इससे देवताओं की चिन्ता बढ़ गई उन्होंने ब्रह्मा के समक्ष अपनी समस्या को रखा तो ब्रह्मा ने उन्हें आश्वस्त किया कि सभी कुछ ठीक होगा। इस कार्य के लिए अग्नि को आदेश दिया गया कि वह कबूतर बन कर शिव का वीर्य ग्रहण करे। अग्नि ने वैसा ही किया किन्तु वह इतने अधिक ताप को सहने में असमर्थ रहा और उसने उसे गिरा दिया। सभी देवता विकल हो रहे थे कि इस समस्या का निदान क्या है? तब उनके वीर्य को न सहने के कारण सब देवता पीड़ित हुए शिव की इच्छा से उनकी बुद्धि नष्ट हो गई। विष्णु आदि सब देवता मोहित होकर शिव के द्वार पर जाकर बोले हमको गर्भ रह गया है।

शिव पुराण कुमार खण्ड अ.2 के अनुसार- स्नान करके 6 स्त्रियाँ शीत में महा व्याकुल हुईं हे मुने! वे शीघ्रता से अग्नि की ज्वाला के समीप गईं। अग्नि के तापते ही शिव वीर्य के कण उनके शरीर में रोम के छिद्रों द्वारा प्रवेश कर गये। जिससे अग्नि का दाह निवृत्त हो गया। मुनियों ने उन स्त्रियों को इस प्रकार गर्भ युक्त देखकर क्रोध से व्याकुल हो त्याग दिया। वे छहों स्त्रियाँ इस प्रकार अपना व्यभिचार देख कर महा दुःख से व्याकुल हो गईं। उस मुनियों की स्त्रियों ने उस वीर्य को त्याग दिया, हिमालय के ऊपर उस वीर्य को त्याग कर वे सुखी हुईं। उस वीर्य को सहने

की सामर्थ्य न रखने के कारण हिमालय कम्पित होने लगा। उस दाह को न सह सकने के कारण उसने उस वीर्य को गङ्गा में डाल दिया। गङ्गा भी शिव जी के वीर्य को न सह सकी और पीड़ित हो अपनी तरङ्गों से उस वीर्य को सरकण्डे के वन में त्याग कर दिया। वहाँ वह वीर्य पतित होते ही तत्काल बालक बन गया जो सुन्दर, सुभग और तेजस्वी प्रीति को बढ़ाने वाला था। इस प्रकार छह मुँह वाले स्कन्द अथवा कार्तिकेय का जन्म हुआ।

गणेश जन्म

पार्वती स्नान करने बैठीं तो उन्हें चिन्ता हुई कि द्वार पर कोई रक्षक होना चाहिए।

विचार्येति च सा देवी वपुषो मलसम्भवम्।

पुरूषं निर्ममौ सा तु सर्वलक्षण संयुतम्।।20 ।।

हे तात श्रृणु मद्वाक्यं द्वारपालो भवाद्य मे।।25 ।।

विना मद्याज्ञां मत्पुत्र नैवायान्मद् गृहान्तरम् ।।26 ।।

एतस्मिन्नेव काले तु शिवो द्वारे समागतः।। 31 ।।

ताडितस्तेन यष्टया हि गणेशेन महेश्वरः ।। 35 ।। शिव. रूद्र. कु. अ. 13

क्रोधं कृत्वा समभ्येत्य मम श्मश्रण्यवाकिरत्। अ. 15 श्लोक 31

अथ शक्तिसुतौ वीरो वीर गत्यसा स्वयष्टितः।

प्रथमं पूजयामास विष्णुं सर्वसुखावहम्।।11 ।।

एतदन्तरमासाद्य शूलपाणिस्तथोत्तरे।

आगत्य त त्रिशूलेन तच्छिरो निरकृन्तत।। 14 ।। अ. 16

तावच्च गिरिजा देवी चुक्रोधाति मनीश्वर।। 4 ।। अ. 17

प्रथमं मिलितस्तत्र हस्ती चाप्येकदन्तकः ।। 49 ।।

तच्छिहश्च तदानीत्वा तत्र तेऽयोजयन् ध्रुवम् ।। 50 ।।

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि पूर्वपूज्यो भवाधुना।।8 ।। अ. 18

अर्थात् विचार करके पार्वती ने अपने शरीर से मैल उतारकर सब लक्षणों से युक्त पुरूष बनाया और कहा कि द्वारपाल बन जा। मेरी आज्ञा के बिना कोई मेरे घर के अन्दर न आवे। इतने में शिवजी द्वार पर आ गये। गणेश ने महादेव को लाठी से पीटा। क्रोध में आकर ब्रह्मा की भी दाड़ी उखाड़ डाली। फिर प्रथम पार्वती के पुत्र गणेश ने डण्डे से विष्णु की पूजा की। इतने में मौका पाकर शिव ने त्रिशूल से गणेश का सिर काट दिया। इस पर पार्वती को क्रोध आ गया। पहले पहल एक दाँत वाला हाथी मिला, तब उसका सिर काटकर गणेश के धड़ पर जोड़ दिया। पार्वती ने धन्य कहकर पूर्वपूजा का विधान कर दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गणेश की उत्पत्ति नितान्त अस्वाभाविक प्रकार से होती है। क्या पार्वती के शरीर पर इतना मैल था जो एक पुतला बन सके। यदि यह सत्य मान लिया जाय तो यह तो स्वतः ही सिद्ध हो जाता है कि गणेश का जन्म न तो पार्वती की कोख से ही हुआ और न ही शिव के वीर्य से। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि जिस बालक का सिर कट गया के धड़ पर हाथी के बच्चे का सिर किस प्रकार सही लग या फिर उसके स्वर यन्त्र और मस्ति,क तो हाथी के ही रहेंगे वह किस प्रकार की भाषा बोलेगा।

अन्धक- शिव के एक और पुत्र कहा गया है अन्धकासुर, इसकी उत्पत्ति भी अलौकिक है। एक बार शिव और पार्वती विहार कर रहे थे कि विनोद वश पार्वती ने शिव के दोनों नेत्र अपने हाथों से बन्द कर दिये। इससे शिव के ललाट पर पसीने की बूँदें उत्पन्न होकर भूमि पर टपक पड़ीं। इस बूँदों से एक ऐसा जीव प्रकट हुआ जिसका मुख विकराल था, वह अत्यन्त भयंकर, क्रोधी, कृतघ्न, अंधा, कुरूप, जटाधारी, काले रंग का, मनुष्य से भिन्न, बेडौल और सुन्दर बालों वाला था।

पार्वती के प्रश्न करने पर शिव ने कहा कि जब तुमने मेरे नेत्र मूँदे थे तभी यह प्राणी पसीने से उत्पन्न हुआ है। इसका नाम अन्धक है। इसका पुत्रवत पालन करो।

कालान्तर में हिरण्याक्ष ने शिव को प्रसन्न कर एक बलशाली पुत्र की अभिलाषा प्रकट की। शिव ने कहा कि मेरा एक पुत्र तेरे जैसा ही बलशाली अन्धक नाम वाला है वह मैं तुम्हें प्रदान करता हूँ। इसी हिरण्याक्ष का वध विष्णु के द्वारा हो जाने पर अन्धक को राजगद्दी मिली। इधर अन्धक के दूतों ने उसे पार्वती के सौन्दर्य के विषय में बताया तो उसने अपने दूत भेजकर शिव से पार्वती को माँगा। शिव के इनकार करने पर युद्ध आरम्भ हो गया। इस युद्ध में पहले तो शिव ने उसे मार ही दिया फिर दया करके उसे जीवित कर अपने गणों का अध्यक्ष बना दिया।

(शिव पुराण रूद्र संहिता अ. 26 से 49)

शुक्राचार्य- अन्धकासुर के युद्ध करते समय शिव ने देखा कि हताहत असुरों को शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्या से जीवित करते जाते हैं तो उन्होंने शुक्राचार्य को पकड़वा कर अपने मुँह में रखकर निगल लिया। वे उनके उदर में भटकते रहे और अन्त में उनके लिंग मार्ग से होकर निकले। भगवान शंकर ने प्रसन्न होकर उन्हें अपना पुत्र स्वीकार करते हुए उन्हें शुक्र नाम दिया।

(शिव पुराण रूद्र संहिता अ. 48)

इस प्रसंग में विचारणीय है कि शुक्राचार्य तो पहले से ही इस नाम से पुकारे जाते थे। तब शिव के द्वारा इस नामकरण का क्या अर्थ है।

शिव का पौत्र आड़ि- अन्धक का पुत्र आड़ि था, जो शिव का पौत्र हुआ। इसने पार्वती की अनुपस्थिति में शिव के पास पार्वती के रूप में पहुँच कर शिव को प्रसन्न किया। शिव ने उसके छल को जानकर उसे मैथुन कर के मार डाला। (मत्स्य पुराण अ. 155, डा. श्रीराम आर्य लिखित- 'शिवजी के चार विलक्षण बेटे' से उद्धृत)

इन सारे प्रसंगों से तो यही निष्कर्ष निकलता है कि शिवजी निःसन्तान थे ये कहानियाँ स्वयं ही अपनी सत्यता पर प्रश्न चिह्न लगाने का कार्य कर रही हैं। इन पर विचार करें तो यही ध्वनि निकलती है कि पुराणकार शिव को परमात्मा मानते हुए भी उनके कार्य कलाप साधारण मनुष्य से भी निम्न स्तर के लिखने में संकोच नहीं करते।

शिव की माया का प्रभाव

इस पुराण में शिव का चरित्र तो अनुकरणीय है ही नहीं वहाँ उनकी माया भी दूसरे देवताओं के चरित्र को गिराने का कार्य करती है। देखें- शिवपुराण उमा संहिता अं 4। श्लोक 7 से 38 तक।

सनत्कुमार जी बोले- हे व्यास जी शिव जी की सुखदायक कथा सुनो, जिसके सुनने मात्र से शिवजी में भक्ति होती है। हे मनीश्वर! शिवजी की माया के प्रभाव से विष्णु ने काम से मोहित होक अनेक बार पर-स्त्री प्रसंग किया। इन्द्र देवताओं का स्वामी होके गौतम मुनि की स्त्री पर मोहित होके पाप करने लगा तो उस दुष्टात्मा ने गौतम मुनि का शाप पाया। जगत् में श्रेष्ठ अग्नि भी शिव की माया से मोहित होने से गर्व से काम के वशीभूत हुए और फिर शिव ने ही उनका उद्धार किया। हे व्यास जी! जगत् के प्राण विष्णु भी शिव की माया से मोहित होके काम के वशीभूत होने से पर-स्त्री से प्रेम करने लगे। तीव्र किरणों वाले सूर्य भी शिव की माया से मोहित हो काम में व्याकुल होकर घोड़ी को देख शीघ्र ही घोड़े का रूप धारण करने वाले हुए। शिव की माया से व्याकुल चन्द्रमा ने भी गुरू की पत्नी का हरण किया और शिव ने ही उद्धार किया। पहले घोर तप में प्रवृत्त हुए मित्रा वरूण दोनों मुनि भी शिव की माया से मोहित हो गये। तरूणी उर्वशी अप्सरा को देख के काम से मोहित हुए तब मित्र ने घड़े में और वरूण ने जल में अपना वीर्य छोड़ा। तब उस कुम्भ से मित्र के पुत्र वशिष्ठ जी उत्पन्न हुए, वरूण से बड़वानल के समान कान्ति वाले अगस्त जी उत्पन्न हुए। शिव की माया से मोहित हुए ब्रह्मा के पुत्र दक्ष अपनी (बहिन) वाणी से भोग करने की इच्छा वाले हुए। ब्रह्मा ने शिव माया से मोहित हो अनेक बार अपनी पुत्रियों से भोग करने की इच्छा की। शिवमाया से मोहित हुए महायोगी च्यवन ऋषि ने भी कामवश अपनी कन्याओं में आसक्ति की। शंभु कीमाया से मुग्ध हुए गौतम मुनि ने भी शरद्वती को नग्न देखकर काम से व्याकुल होके उसके साथ रमण किया। फिर उस तपस्वी ने निकले हुए अपने वीर्य को दौने में रखा जिससे द्रोणाचार्य जी पैदा हुए। शिव की माया से मोहित हो पारासर जी ने दास कन्या मत्स्योदरी से विहार किया। विश्वामित्र ने शिवमाया से मोहित हो मेनका से व्यभिचार किया। शिवमाया से मोहित हो रावण ने काम के प्रभाव से सीता का हरण किया। शिव माया से मोहित हो देवताओं के गुरू बृहस्पति ने काम के वश अपने बड़े भाई की स्त्री से भोग किया जिससे भारद्वाज पैदा हुए।

इस सारे प्रकरण में देखने योग्य बात हे कि जितने प्रतिष्ठित ऋषि मुनि हैं वे व्यभिचार से उत्पन्न हुए हैं या स्वयं व्यभिचार में लिप्त हैं। उन्हें व्यभिचारी बनाने में शिवमाया का ही प्रभाव है। आश्चर्य की बात है कि शिव का अर्त कल्याण करने वाला है जबकि शिव अपनी माया के प्रयोग से तपस्वी लोगों को कामुक बनाकर उन्हें पतित बनाने का कार्य करते हैं।

क्या यही शिवजी की सुखदायक कथा है?

शिव की पूजा का वाममार्गी प्रकार

शिव-पूजा के नाम पर लिंग-पूजा का प्रचलन एक अन्य अश्लील और निरर्थक कृत्य है जिसे सभ्य समाज में आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता । जो लोग इसके वास्तविक रूप को नहीं जानते वे अन्धश्रद्धावश इसका समर्थन करते देखे जाते हैं। इसे महिमामण्डित करने के लिए शिवपुराण कोटिरूद्र संहिता 4 अ. 12 में दारूवन की कथा का सृजन किया गया है। इस वन में सत्पुरूष लोग रहते थे जो शिव के ध्यान में मग्न रहते थे। एक बार शिव वहाँ नंग-धड़ंग होकर, हाथ में लिंग धारण कर विचरने लगे। यह देखकर ऋषियों की पत्नियाँ अत्यन्त भयभीत हो गईं। जब ऋषियों ने यह कृत्य देखा तो पूझा कि तुम कौन हो। उत्तर न मिलने पर उन्होंने कहा कि तुमने यह वेद के लोप करने वाला कार्य किया है अतः तुम्हारा यह लिंग पृथिवी पर गिर पड़े। लिंग उसी समय गिर पड़ा। वह स्थिर न होकर जिस लोक में गया वहाँ सब कुछ भस्म करने लगा इससे त्रस्त होकर देवताओं ने शिव की स्तुति की जिससे प्रसन्न होकर शिन ने कहा कि पार्वती यदि योनिरूप होकर इसे धारण करें तो यह शान्त हो जायेगा।

इसी कारण शिव-मूर्ति को योनि और लिंग के रूप में बनाकर उसे पूजा जाता है। इसे शान्त रखने के लिए इसके ऊपर जलपूर्ण घट लटकाया जाता है। इस समस्त बातों का शिवपुराण में सविस्तार वर्णन है।

लिंग पूजा का प्रचलन कराने के लिए जिस कथा का सृजन किया गया है उसमें शिव का चरित्र किसी भी प्रकार से सभ्य समाज में आदर पाने योग्य नहीं हैं। और यदि शिव ऐसे ही चरित्र वाले थे तो स्वयं ही विचार करें कि ऐसा चरित्र आपको क्या शिक्षा दे सकता है।

इस विषय में पं. राजेन्द्र- 'भारत में मूर्तिपूजा' नामक पुस्तक में लिखते हैं- "उचित तो यह था कि देश के विचारशील विद्वान् मूर्तिपूजा के स अश्लील तथा अशिष्ट प्रकार के विरूद्ध आवाज उठाते और इसका प्रचार रोकने का प्रयत्न किया जाता, किन्तु इसके विपरीत इस 'शिवलिंग' शब्द की नवीन व्याख्या द्वारा सत्या को छिपाने का अनुचित यत्न किया जाता है, जोकि पुराणों में दी गई अनेक साक्षियों के भी सर्वथा विपरीत है। इन नवीन व्याख्याताओं का कहना है कि 'लिंग' का अर्थ उपस्थेन्द्रिय न होकर 'चिह्न' है, अतः उनके अनुसार 'शिवलिंग' का अर्थ शिव का चिह्न हुआ।

दक्षिण भारत, बिहार, बंगाल तथा असम के मन्दिरों में प्रतिष्ठित शिवलिंग तथा शिव पार्वती की मूर्तियों के चित्र जो गीता प्रेस के 'कल्याण' के 'शिवाङ्क' एवं 'हिन्दू संस्कृति अंक ' 1950 में प्रकाशित हैं वे प्रमाण रूप में देखे जा सकते हैं।

इसी प्रसंग में एक और विवरण भविष्ण पुराण प्रतिसर्म पर्व 3 अ. 17 में देखा जा सकता है। ऋषि अत्रि की पत्नी अनसूया के सामने विष्णु, शिव और ब्रह्मा हाथ में लिंग धारण कर पहुँचे और उससे मैथुन करने की चेष्टा करने लगे। उसने कुपित होकर शाप दिया कि संसार में शिवका लिंग, ब्रह्मा का सिर और विष्णु के पैर पूजे जायेंगे और हे देवताओं तुम्हारा उपहास होगा।

कहिये ये शाप है या वरदान? फिर भी पुराणकार ने इन तीनों देवताओं को चरित्रहीन तो बना ही दिया।

डा. श्रीराम आर्य ने 'पौराणिक गप्प दीपिका' में दो ऐसे प्रसंग दिये हैं जिनसे पौराणिक शिव की मानसिकता का स्तर उजागर होता है। महाभारत सौप्तिक पर्व अ. 17 वाला प्रसंग पृष्ठ 13 पर दे चुके हैं, दूसरा प्रसंग देखें -

(पद्मपुराण सृष्टि खण्ड अ. 31 कलकत्ता के अनुसार) एक शिवदूती शिवजी से ऐसे भोजन की माँग करती है जो रसयुक्त, मीठा और दिल को ताकत देने वाला हो। इसके उत्तर में शिवजी कहते हैं मैं तुम्हें ऐसी वस्तु देता हूँ जिसे आज तक किसी ने नहीं चखा है। मेरे अधोभाग में नाभि के नीचे दो गोल फल हैं, तुम मेरे लम्बे के साथ दोनों वृषणों को ख डालो। इनका भोजन कर लेने से तुम्हारी पूर्ण तृप्ति हो जायेगी। हाँ जो कोई जो लोग बिवा हास्य किये इस का शुभ आचरण करेंगे उनको धन, पुत्र, स्त्री, मकानादि सम्पत्ति ये सब कुछ प्राप्त हुआ करेगा।

इस प्रसंग पर टिप्पणी करते हुए डा. साहब लिखते हैं कि शिवजी की सूझ बड़ी विलक्षण थी। किसी स्त्री के भोजन माँगने पर उससे ऐसी बात कहना पौराणिक सभ्यता को प्रकट करता है। शिवजी को यह भय था कि कहीं लोग उनकी इस बात का मजाक न उड़ायें इसलिए उन्होंने हास्य करने वालों को भय दिखाने को शाप भी दे दिया। वे आगे लिखते हैं कि हमारी दृष्टि में तो किसी वाममार्गी ने यह कथा गढ़ कर पुराण में प्रक्षिप्त कर के शिवजीको कलंकित किया है।

शिवजी का पार्वती को विचित्र आदेश- इस शीर्षक के अन्तर्गत डा. साहब ब्रह्मवैवर्त पुराण कृष्ण जन्म खण्ड अ. 6 कलकत्ता के अनुसार लिखते हैं विष्णु जब देवताओं के साथ शिव के निवास पर गणेश को देखने के लिए गये तो पार्वती तिरछी निगाहों से विष्णु के अति सुन्दर स्वरूप को देखकर मुग्ध हो गईं। पार्वती के मन की बात को जानकर शिवजी ने विचार किया कि उनका मन भी रह जाये और विष्णु का भी आदर सत्कार पूरी तरह से हो जाये अतः उन्हें एकान्त में बुलाकर कहा कि विष्णु को अपना श्रृंगार दान कर दें (कुकर्म करालें)। हमारी दृष्टि में पौराणिक सत्कार का यह प्रकार एक गन्दी प्रथा है।

कुछ लोगों का विचार है कि शिवलिंग ब्रह्माण्ड का प्रतीक है, इस विषय में निवेदन है कि प्रतीक की व्याख्या क्या इसी प्रकार अश्लील प्रसंग रचकर की जा सकती है। कुछ लोग स्पष्टीकरण देते हैं कि संसार की सृष्टि प्रजजन के अंगों से ही होती है। तब वे अपने माता-पिता के उन प्रजनन अंगों की पूजा क्यों नहीं करते जिनसे वे स्वयं उत्पन्न हुए हैं। निश्चय ही यह विचार वाममार्गी दर्शन का परिचायक है। यही दर्शन समाज में विकृत विचारों को फैलाने का कार्य कर रहा है। इस प्रकार के विचार सभ्य समाज के परिचायक नहीं हो सकते।

महिलाओं के लिए विचारणीय- शिवलिंग पूजा जैसी अश्लील कुप्रथा से तो महिला वर्ग को वैसे भी दूर रहना चाहिए। न तो यह किसी भी अर्थ में कल्याणकारी ही है और न किसी धर्मशास्त्र के द्वारा विहित ही है। पुराणों से उपजी यह प्रथा कुछ पुराणों में ही वर्जित है। देखें- दे. भा. 4.13.16

रागी विष्णुः शिवो रागी ब्रह्मापि रागसंयुतः।

रागवान्किमकृत्यं वै न करोति नराधिप।। 16 ।।

अर्थ- विष्णु, शिव, ब्रह्मा- ये सभी रागी है और हे राजन्! रागी व्यक्ति कौन सा कर्म (कुकर्म) नहीं कर सकता।

शंभो पपात् भुवि लिंगमिदं प्रसिद्धं शापेन तेन चभृगोविचैपिने गतस्य।

तं ये नराः भुवि भजन्ति कपालिनं तु तेषां सुखं कथमपि परत्र मातः ।।

दे. भा. 5.19.19

अर्थ- भृगु के शाप से जिस शिवजी का लिंग गिर गया था, और जो हाथ में मनुष्यों की खोपड़ियाँ रखता है, उस शिवजी की जो उपासना करते हैं, हे मात! उनको इस लोक या परलोग में कहीं भी सुख नहीं मिलेगा।

पाषण्डैः पूज्यमानस्तु लिंग रूप धरः शिवः।पद्म पु. उ. ख. अ. 225.42)

लिंग रूपी शिव की पूजा पाखण्डियों में ही मान्यता प्राप्त करेगी।

पद्म पु. पाताल ख.अ. 114 श्लोक 205 में शिवजी स्वयं ही अपनी पूजा का निषेध करते हुए कहते हैं। 'मेरे नैवेद्य-पत्र-पुत्र और फल कोई भी ग्रहण करने योग्य नहीं है। मेरे ऊपर चढ़ाया मानो कुंए में फेंक देना है।'

धूर्तैः पुराणचतुरैर्हरिशंकराणां सेवापराश्च विहातास्तव निर्मितानाम्।।

दे. भा. 5.19.12 के अनुसार धूर्त, चतुर लोगों ने शिव, ब्रह्मा, विष्णु आदि की पूजा अपने पेट भरने के लिए चलाई है।

पुराणों की रचना का उद्देश्य

डा. श्रीराम आर्य के अनुसार जिन देवताओं की प्रशंसा में पुराणों में सम्प्रदायवादियों ने हजारों मिथ्या श्लोक लिख दिये हैं, उन्हीं देवताओं की निन्दा जब इन पुराणों में लिखी देखते हैं तो यह मानने पर हमें विवश होना पड़ता है कि ये पुराण किसी हालत में व्यास जी अथवा किसी एक विद्वान की रचना नहीं है। पुराणोक्त शिव पर्वतीय भूतान प्रदेश के जंगली लोगों के राजा थे। पुराणों के बनाने वाले पर्वतीय कवियों ने उनको परमात्मा बताकर जनता को धोखे में डाल दिया है।

'शिवभक्तो! कुछ सोचें!!!' के शीर्षक से आचार्या सूर्या देवी चतुर्वेदा का एक लेख संवत् 2069 शिवरात्रि के अवसर पर 'आर्य संसार' में प्रकाशित हुआ जिसमें उज्जैन के महाकालेश्वर मन्दिर में शिव की पूजा करने का विवरण दिया है। उन्हीं की लेखनी के अनुसार-

"उज्जैन के स महाकालेश्वर की यह विशेषता है कि उनकी आराधना जहाँ बिल्व पत्र, गुलाब पुष्प, चावल, रोली, गुड़, दुग्ध आदि द्रव्यों से होती है, वहीं श्मशान से लाई गई ताजी भस्म से भी होती है। इस आराधना को 'भस्म आरती' कहा जाता है। शिव महाकालेश्वर का यह भस्म आरती आराधना कार्य प्रातः 5 बजे होता है। श्मशान से भस्म लाने का कार्य व भस्म आरती करने का कार्य नरमुण्डधारी औघड़ का होता है। भस्म आरती के समय यजमान, पुजारीगण एवं भस्म लानेवाला औघड़ वहाँ रहते हैं। वर्तमान में पुजारीगण ही भस्म आरती करते हैं, औघड़ एक तरफ खड़ा रहता है। भस्म आरती का यह तरीका है कि श्मशान से लाई गई लगभग 5-6 किलो भस्म वस्त्र में रखकर, वस्त्र की पोटली सी बनाकर शिवलिंग पर तब तक झाड़ी जाती है, जब तक पूरी की पूरी भस्म शिवलिंग पर न छन जाये। भस्म आरती करने से पूर्व शिवलिंग को खूब धोया माँजा जाता है। चन्दन, रोली आदि से त्रिनेत्र आदि बनाये जाते हैं, पुष्प आदि भी चढ़ा दिये जाते हैं।.....मन्दिर में तो भस्म आरती का दृश्य नारी जगत् नहीं देख सकता।..."

महाकालेश्वर की इस सीरियल भस्म आरती को देखकर मेरा मन तो बुझ ही गया। ईश्वर के स्वरूप विषयक विचार भी चक्र प्रतिचक्र करने लगे।... उसके साथ यह कैसी अशिष्टता=बदसलूकी है? ईश्वर की कृपा, ईश्वर का सान्निध्य आदि राख छानने से मिलती है, तब तो उदर भरने के लिए चूल्हे में जलायी गई अग्नि की भस्म को छानने वाले उनकी अपेक्षा अधिक भाग्यशाली होंगे।

दयानन्द का शिव दर्शन

आचार्या सूर्या देवी चतुर्वेदा का एक अन्य लेख सार्वदेशिक साप्ताहिक दि. 16 मार्च 2003 को प्रकाशित हुआ जिसका कुछ भाग यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

“महर्षि दयानन्द ने मूर्तिपूजा का खण्डन किसी विरोध या वैरभाव के कारण नहीं किया अपितु इतिहास और वेदादि शास्त्रों से विरूद्ध होने से किया। महर्षि को यह अलौकिक ज्ञान फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को शिवलिंग की निस्सार पूजा को देखकर हुआ था। जो परमेश्वर अकाय है, सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में रमा हुआ है, जिसे हमारी ये दो आँखें सर्वदी ही देखने में असमर्थ हैं, जिसकी दिव्यता, विलक्षणता वेदों में भरी पड़ी है, जिसे उपनिषदों के-

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्।

अनाद्यनन्त महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते।। कठो3.15

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोतं तदपाणिपादम्।

नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भृत्योनिं परिपश्यन्ति धीराः।।

मुण्डक- 1.1.6

आदि वचनों के द्वारा व्याख्यात किया गया है। उपनिषद् के इन वचनों में विलक्षण परमात्म की पहचान बड़े स्पष्ट शब्दों में कराई है। जो शब्द, रूप, स्पर्श आदि से रहित है, नित्य है, अनादि है, अनन्त है, अदृश्य है, जिसे ग्रहण नहीं किया जा सकता। उसका कोई वर्ण नहीं, वंश नहीं, गोत्र नहीं, उसके कोई हाथ-पाँव, आँख-कान नहीं, वह विभु है, सर्वव्यापक है, सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, अविनाशी है, सब भूतों का कारण है, जिसे धीर ज्ञानी जान लेते हैं और मृत्यु के मुख से दूर हो जाते हैं। ऐसे परमेश्वर की पहचान शिवरात्रि के जागरण ने मूलशंकर को करा दी। चौदह वर्षीय मूलशंकर रात्रि के तृतीय प्रहर में कैलाशपति शिव के प्रभुत्व को देखने के लिए लालायित न रहते तो सम्भव है उस शिव के दर्शन न होते जिसके अनेक नाम हैं।

ऐसे शिव की खोज के लिए मन्दिर के जाल से उठ खड़े हुए और गिरि कन्दराओं की पगडण्डियों का मार्ग पकड़ा।

परमेश्वर की प्राप्ति के लिए रात्रि का तृतीय प्रहर शास्त्रों में बताया गया है, जिसे अश्विनी काल कहते हैं। उस समय आकाश में प्रकाश होता है और नीचे अन्धकार आच्छादित होता है।.... ब्राह्ममुहूर्त में परमात्मा को प्राप्त करने का आदेश निम्न वेद मन्त्र दे रहा है- प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम्। अस्य सोमस्य पीतये। ऋ. 1.22.1

मन्त्र से स्पष्ट हो रहा है कि शान्तिदायक परमेश्वर अश्विनी काल में समाधिस्थ होने पर प्राप्त होता है। अपने शरीर व इन्द्रियों को बाह्य क्रिया-कलापों में लगाने से नहीं, और न दिन भर के घण्टे घड़ियाल के पचड़े से।

अदेवाद्देवः प्रचता गुहा यन् प्रपश्यमानो अमृतत्वमेमि।

शिवं यत् सन्तमशिवो जहामि स्वात्सख्यादरणीं नाभिमेभि।। ऋ. 10.124.2

अन्तः में प्रतिपादित किया गया कि शिव रूप परमात्मा तब प्राप्त होता है जब हम देव बन जाते हैं, अपनी हृदय गुहा में प्रवेश करते हैं और अपनी अशिव दुखदाई वृत्तियों को, दुर्गुणों को, दुर्वासनाओं को त्यागते हैं। शिव की प्राप्ति लिंगपूजा, पत्रपूजा, पुष्पपूजा, नैवेद्य आदि से नहीं।

धन्य है महर्षि दयानन्द जिसने शिवलिंग पर फुदकते चूहे के करतब से परख लिया कि वह शिव इन आँखों से नहीं, हृदय में मिलेगा और हृदय में ढूंढने के लिए स्वयं जगे व जन-जन को जगाया। अज्ञान, अन्धकार, जड़ पूजा से बचाया तथा कुल और देस के गौरव को बढ़ाया। सत्य शिव को पाने का मार्ग प्रशस्त किया।"

मूर्ति दर्शन शिव दर्शन नहीं- स्वामी दगदीश्वरानन्द ने टंकारा में एक बार बताया था कि एक ग्रामीण व्यक्ति सोमनाथ मन्द्र में दर्शनों के लिए गया। वहाँ बहुत भीड़ थी, अतः दर्शनार्थियों को जल्दी-जल्दी बाहर निकाला जा रहा था। यह ग्रामीण व्यक्ति एक कोने में खड़ा था तो पुजारी की दृष्टि उस पर पड़ी। उस ग्रामीण को डांटते हुए पुजारी ने कहा कि तुम यहाँ क्या कर रहे हो जाते क्यों नहीं? वह भोला ग्रामीण बोला कि बहुत दूर से आया है, उसे खड़ा रहने दें, शायद भगवान उसे दर्शन दे देवें। इस पर वह पुजारी आग बबूला होकर बोला कि उसे मन्दिर में पूजा कराते वर्षों बीत गये परन्तु आज तक तो उसे दर्शन दिये नहीं, तुझे कैसे दर्शन दे सकते हैं। (आर्य संसार, अप्रैल 2013 में प्रकाशित श्री मन मोहन कुमार आरय के लेख 'क्या मूर्ति पूजक ईश्वर को प्राप्त कर सकता है' से उद्धृत)

उपसंहार

शिव के विषय में जो निष्कर्ष हमें प्राप्त होता है उसके अनुसार आदि काल में प्राप्त ज्ञान वेद में परमात्मा के अनेक नामों में एक नाम शिव है जो उसके विशेषण के रूप में कल्याणकारी अर्थ में प्रयुक्त होता है। वेद में व्यक्तिगत इतिहास न होने के कारण लोक में शिव नाम से प्रसिद्ध व्यक्तियों का उसमें उल्लेख होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

रामायण और महाभरत इतिहास ग्रन्थ हैं अतः उनमें शिव वा रूद्र नाम के व्यक्तियों का उल्लेख प्राप्त होता है जो अलग-अलग समय में हुए थे। इन्हें एक ही व्यक्ति मान लेने से उनका इतिहास संदिग्ध हो जाता है।

महाभारत काल के पश्चात् जैन और बौद्ध विचारधारा के प्रतिकार के लिए पौराणिक साहित्य की रचना हुई जिसका मुख्य उद्देश्य अवतारवाद और मूर्तिपूजा को प्रतिष्ठित करना था। इसके लिए प्राचीन महापुरूषों को परमात्मा अथवा उसका अवतार प्रसिद्ध करने का क्रम चला। इस प्रयत्न में पुराणकारों ने चमत्कारिक एवं कामुक प्रसंगो की रचना की। उनके इस कार्य से महापुरूषों के चरित्र संदिग्ध एवं कलंकित हो गये।

हम देखते हैं कि प्राचीन काल में शिव नाम जहाँ कल्याणकारी अर्थ में प्रयुक्त होता था वह पौराणिक काल तक आते-आते दूषित चरित्र वाले एक ऐसे व्यक्तित्व का बोधक हो गया जो किसी भी अर्थ में अनुकरणीय नहीं है। वाम मार्ग की कृपा से शिव और पार्वती के गुप्तांगों की पूजा का प्रचलन हुआ जो किसी भी सभ्य समाज में निंदित माना जायेगा।

अनेक दुरितों से युक्त पौराणिकों शिव न तो किसी का कल्याण ही कर सकता है और न अपने चरित्र से किसी को चरित्रवान होने की शिक्षा दे सकता है। आश्चर्य की बात यह है कि धर्म का रक्षक कहलाने वाला वामन समुदाय साहस के साथ इसका विरोध करने के बजाय, इनके दूषित चरित्रों को महिमामण्डित करते हुए देखा जाता है।

हमारा स्पष्ट मत है कि वास्तविक शिव नामधारी व्यक्ति ऐसे नहीं रहे होंगे। यह दुष्कृत्य तो दूषित विचार वाले पुराणकारों का है जिन्होंने प्राचीन ऋषि-मुनियों तक को कलंकित करने में कोई संकोच नहीं किया।

विचार करें कि हमें कौन से शिव का दर्शन करना है, वेद-वर्णित शिव का अथवा पौराणिक शिव का।

मनु

॥ ओ३म् ॥